IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 26, Issue 1, Series 1 (January. 2021) 69-72
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

पर्यावरण की पाष्चात्य अवधारणा

डॉ. रामकल्याण मीना
सह आचार्य राजनीति विज्ञान
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
झालावाड़ (राज.) 326001

सरांष *–प्राकृतिक पर्यावरण की महत्ता अद्यतन समाज में स्वयं एक प्रश्न चिन्ह या मुद्दे बनकर उभर रही है अनवरत बढ़ती जन चेतना, वायु व जल प्रदूषण, गैस दुष्प्रभाव, ओजोन परत की समस्या, जनसंख्या, कचरा व्यवस्थापन, आणविक ऊर्जा इत्यादि सभी समस्याएँ जीवन की गुणवत्ता व ब्रह्माड में पृथ्वी के अस्तित्व का संभावित चिन्ह प्रस्तुत करती है। यद्यपि पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता प्राचीन समय से रही हैं शरीर वैज्ञानिक संरचना तथा उसे जीवन देने वाले अविमोचनीय संबंध विषय पर प्राचीन काल में हिप्पोक्रेटिस, यूसीडाइडिस व प्लेटो से लेकर आधुनिक काल में बोडिन, मांटेस्क्यू, बकिल तथा एल्सवर्थ, हंटिगटन तक बड़ी संख्या में सामाजिक चिंतकों ने चर्चा की है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण के प्रति कुछ विचारधाराएँ है जैसे निश्चयवादी, संभववादी, पारिस्थितिक, हरित विचारधारा, आदि।*

मुख्य शब्द –प*र्यावरण, ओजोन, उपभोक्तावादी, नियतिवाद, संभववाद, उत्पादकता, सततता।*

पर्यावरण जैव मण्डल का आधार होता है लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद से विकास की जो तीव्र प्रक्रिया अपनाई गयी है उसमें पर्यावरण के आधारभूत नियमों की अवहेलना की गयी। जिसका परिणाम पारिस्थितिक असंतुलन एवं पर्यावरणीय निम्नीकरण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। आज विश्व के विकसित देश हो या विकासशील देश कोई भी पर्यावरण प्रदूषण के कारण उत्पन्न गंभीर समस्या से अछूता नहीं है। 1970 के दश में ही यह अनुभव किया गया कि वर्तमान विकास की प्रवृत्ति असंतुलित है एवं पर्यावरण की प्रतिक्रिया उसे विनाशकारी विकास में परिवर्तित कर सकती है। तब से लेकर वर्तमान वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय निम्नीकरण की समस्या के समाधान हेतु कई योजनाएँ प्रस्तुत की गयी।[1]

पर्यावरण अंग्रेजी शब्द Environmentका भाषान्तर पुनरूक्ति हैं जो दो शब्दों Environ तथा Mentके सामंजस्य से उत्पन्न हुआ हैं जिनका अर्थ हैं आस–पास से घेरे हुए। विश्वकोश के अनुसार ''पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी दशाओं, संगठन एवं प्रभावों को सम्मिलित किया जा सकता हैं जो किसी जीवन अथवा प्रजाति के उद्भव, विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करते हैं।''[2]

पर्यावरण दो अवयवों से मिलकर बना होता हैं जैविक पर्यावरण और अजैविक पर्यावरण। जैविक पर्यावरण के अन्तर्गत समस्त सजीव जैसे–जन्तु, पौधे और सूक्ष्मजीव आदि आते हैं। अजैविक पर्यावरण के अन्तर्गत पानी, भूमि, हवा आदि आते हैं।[3]प्रारम्भ में मानव व पारिस्थितिकी अन्तर्सम्बन्ध संतुलित थे मानव समुदाय की संख्या कम एवं तकनीकी ज्ञान सीमित होने के कारण पारिस्थितिकीय दोहन कम था इसलिए प्राकृतिक सुन्दरता व संतुलन पर इसका दुष्प्रभाव नगण्य था।

लेकिन आज प्राकृतिक पर्यावरण की महत्ता अद्यतन समाज में स्वयं एक प्रश्न चिन्ह या मुद्दे बनकर उभर रही हैं। अनवरत बढ़ती जन चेतना, वायु व जल प्रदूषण, गैस दुष्प्रभाव, ओजोन परत की समस्या, कचरा व्यवस्थापन, आणविक ऊर्जा, अति जनसंख्या तथा तेल रिसाव इत्यादि सभी समस्याएँ जीवन की गुणवत्ता व बह्माण्ड में पृथ्वी के अस्तित्व का सभांवित चिन्ह प्रस्तुत करती है। पर्यावरण जो कि पृथ्वी पर जाने वाले जीवधारियों के आवरण या खोल के सम्बन्धों को प्रतिपादित करता हैं, विविध प्रकार से जीवधारियों को प्रभावित कर स्वयं जीवधारियों से प्रभावित भी होता हैं। यह विकास एवं विनाश की एक समग्रकारी व्यवस्था हैं जो संतुलन को स्वयं प्राकृतिक प्रकार्यों के माध्यम से बनाये रखती हैं लेकिन यह संतुलन आज समाप्त प्रायः हैं। पर्यावरण अनेक संकटों से ग्रस्त हैं। पर्यावरण संकट के अनेक कारण हैं। जैसे[4]:– पर्यावरण संकट का प्रथम कारण उच्च उपभोक्तावादी संस्कृति हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति ऐसे प्रलोभनकारी उद्योग को विकसित करती हैं जो कि सेवाओं व वस्तुओं से संबंधित अभीष्ट इच्छा की पूर्ति करता हैं। इस उपभोक्ता संस्कृति का मूल उद्देश्य इसमें निहित होता हैं कि वह अधिक मात्रा में अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण संसाधनों का दोहन कर सके। वह इसे जन्मजात अधिकार के रूप में देखता हैं तथा भौगोलिक अध्येता भी इसी दिशा में

पर्यावरणवाद व भविष्यवाद की द्वन्दता को स्वीकार करते हैं क्योंकि व्यक्तियों की आर्थिक आत्मीयता प्राकृतिक उद्देश्यों को नकारती हैं।

दूसरा कारण तीव्र जनसंख्या वृद्धि हैं बढ़ती जनसंख्या का सीधा प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है। इससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ता हैं अधिक जनसंख्या के कारण गरीबी का उदय होता हैं और समस्त संसाधनों का उपयोग मानव जाति की आवश्यकताओं को पूरा करने में ही किया जाता हैं। तीसरा कारण औद्योगीकरण है विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण इंग्लैण्ड में औद्योगीकरण सर्वप्रथम 1860 में प्रारम्भ हुआ। 1860 से वर्तमान समय तक विश्व के पश्चिमी देशों में औद्योगिक विकास अपनी चरम सीमा को छू गया हैं। लेकिन औद्योगीकरण के दो प्रमुख संघटकों अर्थात प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से विदोहन तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव होता हैं।[5]

चौथा कारण वनो का दिनो दिन कम होना हैं। दुनिया का कुल भू क्षेत्र का करीब 30 प्रतिशत वन क्षेत्र है। दुनिया भर में 9.8 अरब एकड़ में फैले वन क्षेत्र का लगभग दो तिहाई भाग रूस, ब्राजील, कनाडा, अमरीका, चीन, आस्ट्रेलिया, कांगो, इण्डोनेशिया, अंगोला तथा पेरू जैसे 10 देशों में सिमटा हुआ हैं 20 वीं शताब्दी के आखिरी दशक में ही प्रतिवर्ष करीब 3.8 करोड़ एकड़ वन क्षेत्र समाप्त हुआ। लाख प्रयत्नों के बावजूद 2.4 करोड़ एकड़ वन क्षेत्र प्रतिवर्ष समाप्त होता आ रहा हैं। यह रफतार रही तो आने वाले 40–50 वर्षों में धरती से पेड़–पौधों का नामो–निशान मिट जायेगा।[6]इन वनों की विनाश लीला ने पर्यावरण को संकट में डाला हैं।

पांचवा कारण जैसे–जैसे समाज में और विशेषतः प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा हैं वैसे– वैसे मनुष्य और पर्यावरण के मध्य अन्तः क्रिया ने एक खतरनाक मोड़ ले लिया हैं। वायु, जल, वन, नदियां, पौधें और प्रकृति के अनेक तत्वों को प्रौद्योगिकी क्षमता ने प्रभावित किया हैं। क्योंकि इन्हींकी बदौलत प्राकृतिक साधनों का दोहन हुआ हैं और इनके अति दोहन ने पर्यावरण के सामंजस्य को विचलित कर दिया हैं।

छठा कारण नगरीयकरण है औद्योगिक क्रान्ति के बाद नगरीयकरण की प्रक्रिया तेज हुईइससे उपजाऊ कृषि भूमि में कमी आ रही हैं। वर्तमान समय में विकसित एवं विकासशील सभीदेशों में अनियोजित व अनियंत्रित नगरीयकरण के परिणामस्वरूप अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैंखचाखच भरी रेलें व मोटरे, अराजकता, पानी व राशन के लिए लम्बी कतारें, सड़कों पर फैलागन्दी नालियों का पानी, जगह–जगह कुड़े के ढेर से उठती दुर्गन्ध, धुआं, घुटन, शोर, आर्थिकविसंगतिया, आदि नगरीय जीवन के पर्याय बन गए हैं।[7]

सातवां कारण अज्ञानता और प्रकृति के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी पर्यावरण असंतुलन का कारण हैं। आदिवासी समाज अज्ञानता के कारण वन विनाश झूमिंग कृषि के लिए करता हैं। खान से खनिज निकालने वाला श्रमिक धरातल आरै वनस्पतियों को विनष्ट करता हैं, पशुपालन पशुओं द्वारा अधिक चराई कर पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने में पीछे नहीं हैं। विकसित समाज में प्रकृति के प्रति उदासीनता इतनी बढ़ गई हैं कि आकाश में आणविक परीक्षण से वायुमण्डल को प्रदूषित कर रहे हैं। समुद्री जल में खनिज तेल, कचरा, और अन्य प्रदूषक सामग्री डालकर विकसित देश समुद्री जीवों का विनाश कर रहे हैं। अनेक देशों में पर्यटन के नाम पर पर्यावरण का ह्रास किया जा रहा हैं।[8]

इसके अतिरिक्त कृषि में बढ़ता कीटनाशकों का प्रयोग, त्रुटिपूर्ण सिंचाई व्यवस्था, गहन कृषि, दावाग्नि, वन्य जीवों का विनाश, स्वच्छता के बारे में नगरवासियों व उद्योग पतियों की लापरवाही, सूचना का अभाव आदि के कारण भी पर्यावरण संकट बढ़ रहा हैं।

विभिन्न विचारधाराएँ –पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता प्राचीन समय से रही हैं शरीर वैज्ञानिक संरचना तथा उसे जीवन देने वाले अविमोचनीय संबध विषय पर प्राचीन काल में हिप्पोक्रेटिस, थूसीडाइडिस व प्लेटो से लेकर आधुनिक काल में बोडिन, माटेस्क्यू बकिल तथा एल्सवर्थ, हंटिगटन तक बड़ी संख्या में सामाजिक चिंतको ने चर्चा की हैं। सभी जीवित प्राणियों का किसी निश्चित परिवेश में अस्तित्व संभव हैं। पाँचवी शती ई. पू. में हिप्पोक्रेटिस ने "वायु, जल और स्थान" पर एक पुस्तक लिखी जिसे सामान्यतया पर्यावरणीय सिद्वान्त पर पहली स्पष्ट अभिव्यक्ति माना जाता हैं। प्लेटो ने अपने एक संवाद में इस प्रकार शोक प्रकट किया कि "पर्यावरण को नष्ट हुए शरीर की अस्थियों में परिवर्तित कर दिया गया है। धरती के समूह तथा कोमल भाग मिट चुके हैं, केवल कंकाल बचा हैं।" पर्यावरणीय सिद्धांत पर कही अधिक बेहतर और पर्याप्त रूप में विकसित अध्ययन मांटेस्क्यू की "स्पिरिट ऑफ दी लॉज" (1748) के बारहवें व तेरहवे अध्यायों में मिलता हैं।[9]

अमेरीकी की प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता मिस सेम्पल अनुसार ''मानव अपने पर्यावरण की उत्पत्ति हैं सन् 1859 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डर्विन के अनुसार मानव अपने पर्यावरण में संघर्ष करके वर्तमान स्वरूप में पहुंचा है। भूगोल में डार्विन के संघर्ष सिद्धांत का सबसे पहले एफ–रेटजिल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ऐथरोपोज्योग्राफी में किया था रेटजिल ने मानव एवं पर्यावरण के संबंध में निश्चयवाद विचारधारा को जन्म दिया। निश्चयवाद विचारधारा के अनुसार मानव एवं पारस्परिक

संबंध में पर्यावरण एवं प्रकृति सक्रिय है और मानव निष्क्रय अर्थात मानव की उन्नति, अवनति एवं विकास की दर पर्यावरण पर निर्भर रहती है। दूसरी और मानव के भाग्य का निर्धारण प्रकृति एवं पर्यावरण करता है।[10]

पर्यावरण के प्रति कुछ विचार धाराएँ हैं जिनमें मानव–पर्यावरण के मध्य सह सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता हैं जैसे[11] :–

निष्चयवादी विचारधाराः– पर्यावरणीय निश्चयवादी या नियतिवादी विचारधारा की मान्यता हैं कि मनुष्य को अन्य जीव जन्तुओं की भाँति प्राकृतिक वातावरण के निर्देश की अनुपालना करनी चाहिए। अतः प्रकृति ने मनुष्य को बनाया है, यही इस उपागम का प्रमुख आधार हैं।

सम्भववादी विचारधारा की मान्यता हैं कि प्रकृति मात्र एक परामर्शदात्री के रूप में हैं। मनुष्य प्रकृति के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। वह प्रकृति में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक अनुकूलन करके परिवर्तित करने की क्षमता रखता हैं। पर्यावरणीय कारक मानव को प्रभावित नहीं करते वरन् मानव द्वारा सामंजस्य के दौरान स्वयं परिवर्तित होते रहते हैं। ब्लास मानव को एक ऐसा भौगोलिक कारक मानता हैं जो कर्म प्रधान और कृत प्रदान दोनों ही हैं। मानवीय क्रिया पृथ्वी के सजीव एवं निर्जीव दोनों तथ्यों में परिवर्तन करती हैं।

उद्देश्यमूलक विचारधारा इस विश्वास पर आधारित है कि मनुष्य प्रकृति के सभी जीव जन्तुओं में श्रेष्ठ है। इस विचारधारा की उत्पत्ति जूडों क्रिशिचयन धार्मिक परम्पराओं के उपदेशों के परिणाम स्वरूप हुई हैं। इन्होनें यह माना कि मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होने के कारण प्रकृति में पायी जाने वाली प्रत्येक वस्तु पर उसका अधिकार हैं तथा वह उसका पर्याप्त उपयोग कर सकता हैं।[12]इस विचारधारा ने मानवीय कौशल एवं क्षमता को प्रोत्साहित करके प्रकृति को नियंत्रित करने का प्रयास किया हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन को गति दी हैं।

आर्थिक निश्चयवादी विचारधारा इस विचारधारा पर आधारित हैं कि मनुष्य का पर्यावरण पर नियंत्रण होता हैं तथा आधुनिक समय में विकसित प्रौद्योगिकी के उपयोग द्वारा आर्थिक तथा औद्योगिक विस्तार में निरन्तर वृद्वि होती रहनी चाहिए।

पारिस्थितिक विचारधारा के अनुसार पारिस्थितिकी विज्ञान की एक नवीन शाखा है तथा यह उन नियमों से सम्बन्धित हैं जो जीवों को उनके वातावरण के आपसी सम्बन्धों का निर्धारण करते हैं। इस दृष्टिकोण की मान्यता हैं कि मनुष्य का प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सहसंबंध परस्परावलम्बन (Symbiosis) का होना चाहिए ना कि विनाशात्मक। यह मनुष्य को सभी प्राणियों में सर्वाधिक कुशाग्र बुद्विमान मानता हैं। इसमें पारिस्थितिकी सिद्वांतों एवं नियमों को मद्देनजर रखकर ही प्राकृतिक संसाधनों का पोषणीय दोहन होना चाहिए।[13]

नवनिश्चयवादी विचारधारा की मान्यता हैं कि मनुष्य को अपने निजी क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों पर आधारित रहना चाहिए और उनका दोहन उतना ही करना चाहिए जितना प्रकृति को पुनः लौटा सके या वे संसाधन जैविक तंत्र से पुनः चक्र आरम्भ कर सके।

हरित विचारधारा पश्चिमी राजनीति में 1970 के दशक में उभरकर सामने आयी और धीरे–धीरे पूरे विश्व में फैल गयी। वातावरण के विज्ञान से गहरे सरोकार के कारण पर्यावरणवादियों को पारिस्थिति विज्ञानवादी भी कहा जाता हैं। इस आन्दोलन के अन्तर्गत वातावरण में हरियाली कायम रखने पर बल दिया जाता हैं, इसलिए इससे प्रेरित राजनीति को हरित राजनीति की संज्ञा दी जाती हैं। कुछ देशों में जैसे न्यूजीलैंड, पश्चिमी जर्मनी और ब्रिटेन में "हरित राजनीति" के लक्ष्यों की सिद्वि के लिए राजनीतिक दल बनाए गए और चुनाव भी लड़े गए यद्यपि उन्हें कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल पाई हैं। पर्यावरणवाद का सैद्वांतिक आधार "सामाजिक न्याय" हैं। इसके समर्थक यह तर्क देते हैं कि धरती किसी की निजी सम्पत्ति नहीं हैं। यह हमें अपने पूर्वजो से उत्तराधिकार में नहीं मिली बल्कि यह हमारे पास भावी पीढ़ियों की धरोहर हैं। अतः हम वर्तमान प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखने के दायित्व से बँधे हैं। वर्तमान पीढ़ियों को यह अधिकार नहीं हैं कि वे अपने उपभोग के लिए धरती या पर्यावरण के सारे संसाधनों को निचोड़कर भावी पीढ़ियों के जीवन को खतरे में डाल दे।[14]

सतत विकास की अवधारणा हैं जो विकास पर जोर देती हैं। ब्रंटलैण्ड के अनुसार "ऐसा विकास जिसमें वर्तमान की आवश्यकताओं की आपूर्ति हो सके और आने वाली पीढियां भी अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति कर सके तथा पारितंत्र भी स्वस्थ एवं सतत अवस्था में बना रहे।"[15]

सतत विकास के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं:—[16]

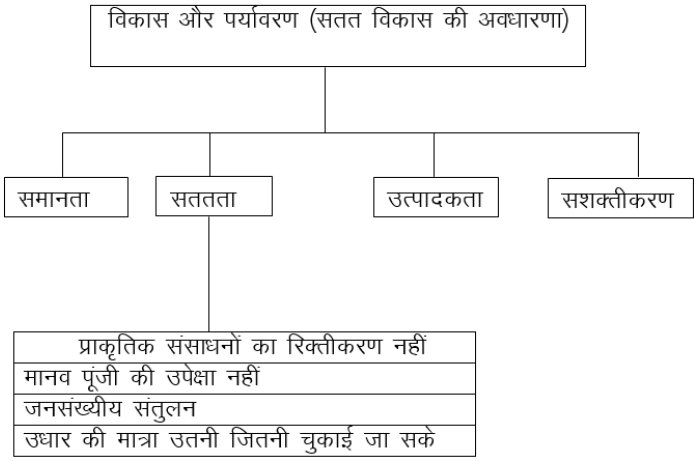

निष्कर्षः—मानव, अब अपने पर्यावरण की उत्पत्ति नहीं, वरन् वह पर्यावरण का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंग है जो तीव्र गति से इसमें परिवर्तन कर रहा है। यू तो मानव आदि काल से पर्यावरण को तब्दील करता रहा है फिर भी आज के युग में परिवर्तन की गति में भारी तीव्रता देखी जा सकती है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सहायता से मानव अपने पर्यावरण में तीव्रता से परिवर्तन करने में सक्षम हो गया है। पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा अपने ही आधुनिक पुरोधाओं से है जो पाश्चात्य विद्वानों की व्याख्या के आगे नतमस्तक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :—

1. कुरुक्षेत्र जनवरी 2008, पृ. 19
2. गुर्जर रामकुमार, जाट बी सी : मानव एवं पर्यावरण पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005, पृ. 01
3. त्रिवेदी, पी.सी., गुप्ता गरिमा : 'पर्यावरण अध्ययन', आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007, पृ. 01
4. कुरुक्षेत्र वही, पृ. 05
5. सिंह, सविन्द्र : ''पर्यावरण भूगोल'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009, पृ. 475
6. कुरुक्षेत्र वही, पृ. 05
7. जोशी रतन : मानव एवं पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
8. राव बी.पी., श्रीवास्तव, वी.के. : वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर, 2009, पृ. 310
9. जौहरी जे.सी. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध तथा राजनीति स्टर्लिंग पब्लिकेशन न्यू देहली, 2001, पृ. 590
10. हुसैन माजिद : ''पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी'' Access Publishing India Pvt. Ltd. New Delhi, 2015,पृ. 1.2
11. गुर्जर, जाट मानव एवं पर्यावरण वही, पृ. 26, 29
12. गुर्जर, रामकुमार, जाट बी.सी. ''पर्यावरण भूगोल'' पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2012, पृ. 59
13. गुर्जर, जाट, ''पर्यावरण भूगोल'' वही, पृ. 60
14. गाबा, ओमप्रकाश : ''राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा'' मयूर पेपर बैक्स नोएडा, 2000, पृ. 416
15. हुसैन माजिद : ''पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी वही, पृ. 6.18
16. तायल, बी.बी. : ''अन्तर्राष्ट्रीय संबंध'' सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 200